साप्ताहिक
Live not just breaTHE

दि कार्मिक पोस्ट

MPHIN/2015/63220
MP/IDC1528/16-18

Global School Of Excellence, Obedullaganj

वर्ष : 6, अंक : 51 (प्रति बुधवार), इन्दौर, 11 अगस्त से 17 अगस्त 2021 पेज : 8 कीमत : 3 रुपये

जलवायु परिवर्तन पर आईपीसीसी की नई रिपोर्ट के बाद कड़ी कार्रवाई की जरूरत

न्यूयार्क । नए बहाने अब और नहीं चलेंगे। जलवायु परिवर्तन पर आशंकाएं बिल्कुल वास्तविक हैं, खतरा करीब है और भविष्य विनाशकारी। जलवायु परिवर्तन पर अंतर-सरकारी पैनल, आईपीसीसी की रिपोर्ट उन्हीं बातों की पुष्टि करती है जिन्हें हम पहले से जानते हैं और अपने आसपास की दुनिया में देख सकते हैं। उदाहरण के लिए तापमान तेजी से बढ़ने की वजह से जंगलों में आग लगना और नमी का खोना, भयंकर बारिश के चलते प्रलयकारी बाढ़ और समुद्र व सतह के बीच बदलते तापमान के कारण आने वाले तीव्र चक्रवात। जिस भविष्य की आशंका थी, वह आ चुका है और हमें इससे बहुत जयादा चिंतित होना चाहिए। बल्कि इस रिपोर्ट से डरकर हमें वास्तविक और सार्थक कार्रवाई करनी चाहिए। रिपोर्ट के निहितार्थ बिल्कुल स्पष्ट हैं। पहला, यह साफ है कि दुनिया 2040 तक 1.5 डिग्री सेल्सियस तापमान की ओर तेजी से बढ़ रही है। यानी कि अपने को सुरक्षित मानकर चल रही दुनिया के लिए दो दशक बाद सांस लेना मुश्किल हो जाएगा। यह ध्यान में रखकर चलना चाहिए कि 1880 के बाद अब तक हमने तापमान में 1.09 डिग्री सेल्सियस की वृद्धि देखी है, यह औद्योगिक क्रांति का दौर था। इसी से हम अंदाजा लगा सकते हैं कि विज्ञान की मौजूदा चेतावनी कितनी खतरनाक है।

दूसरा, यह कि आईपीसीसी के वैज्ञानिकों को अब यह कहने में संकोच नहीं है कि जलवायु में ये बदलाव मानवीय गतिविधियों के चलते आए हैं। दरअसल, वे यह कहना चाह रहे हैं कि मौसम की खास घटनाओं के असर के चलते ही जलवायु में परिवर्तन नहीं हुए हैं। यह इस मायने में खास है कि अभी तक हमें यही समझाया जाता रहा है कि दुनिया में मौसमी घटनाओं की बढ़ती आवृत्ति के चलते ही जलवायु में बदलाव आया है। लेकिन अब हम निश्चित रूप से जानते हैं कि इसमें किसकी कितनी भूमिका है, चाहे वह कनाडा में तापमान बढ़ने का मामला हो, यूनान में जंगलों में आग लगने की घटना हो या फिर जर्मनी में बाढ़। अब किसी अगर-मगर की बात ही नहीं है। अब सवाल यह है कि क्या यह आवाज हमारे कानों तक जा रही है। क्या उतने बड़े पैमाने पर और तेजी से इससे निपटने के उपाय किए जा रहे हैं, जिसकी जरूरत है। जवाब है कि ऐसा अब भी नहीं हो रहा है। और इस संदर्भ में आईपीसीसी की रिपोर्ट का तीसरा मुख्य बिंदु समझना चाहिए। विज्ञान हमें बता रहा है कि धरती के सोंकने की क्षमता आने वाले सालों में उसी तरह कम होती जाएगी, जैसे उत्सर्जन बढ़ता जाएगा। समुद्र, जंगल और भूमि ये तीनों अपनी सोंकने की क्षमता से धरती का 'प्राकृतिक सफाई तंत्र' बनाते हैं। फिलहाल ये तीनों मिलकर हमारे कुल सालाना उत्सर्जन का लगभग पचास फीसद सोंक लेते है। अगर ये सोंकने की जिम्मेदारी नहीं निभा रहे होते तो 1.5 डिग्री सेल्सियस तापमान तक तो हम आज की तारीख में ही पहुंच चुके होते।

दिक्कत यह है कि रिपोर्ट हमें यह भी बता रही है कि हम इन तीनों स्त्रोतों पर इसका भरोसा नहीं कर सकते कि आने वाले समय में भी ये इसी अनुपात से उत्सर्जन को सोंकते रहेंगे। इसका मतलब यह है कि 'शून्य उत्सर्जन' का जो लक्ष्य तय किया गया है, उस पर दोबारा सोचने की जरूरत है। इस लक्ष्य के हिसाब से अमेरिका ने 2050 और चीन ने 2060 तक अपने उत्सर्जन को कम करने का एलान किया है क्योंकि उनका मानना है कि सोंकने के स्रोतों और कार्बन खींचने वाली तकनीक के जरिए वे वातावरण को साफ करने में सक्षम होंगे। अब अगर हम यह देखें कि आईपीसीसी की रिपोर्ट जो कह रही है कि धरती के सोंकने की क्षमता अपने शीर्ष स्तर तक पहुंच चुकी है और इसे बढ़ाने के लिए दुनिया को पेड़ लगाने और कार्बन डाइऑक्साइड को अलग करने के लिए और ज्यादा प्रयास करने होंगे। इस हिसाब से यह रिपोर्ट कह रही है कि अब जागने का समय है। आईपीसीसी की ताजा रिपोर्ट इसकी पुष्टि करती है कि अब हम बातों में वक्त नहीं गंवा सकते या काम न करने के नए बहाने नहीं तलाश सकते, जैसे कि 2050 तक शून्य उत्सर्जन करने का खोखला वादा। अब गंभीर होकर काम करने का वक्त है, सार्थक कार्रवाई करने का वक्त है और यह काम आज से ही शुरू करना होगा। अच्छी खबर यह है कि अब ऐसी तकनीक उपलब्ध है, जो जीवाश्मों के ईंधन को तोड़ सके। इस दिशा में हमें इंतजार करने की जरूरत नहीं है। इसके बजाय हमें कार्रवाई करने की जरूरत है। दिक्कत यह है कि जमीनी स्तर पर हम आज भी यह प्रयास छोटे स्तर पर और देर से कर रहे हैं। दरअसल कोरोना से प्रभावित अर्थव्यवस्थाओं के सामान्य दिशा में आगे बढ़ने के साथ ही ग्रीनहाउस गैसों का उत्सर्जन भी बढ़ेगा। हर देश पटरी से उतर चुकी अपनी अर्थव्यवस्था को तेजी से आगे बढ़ने के लिए हरसंभव प्रयास करेगा। इससे कोयला, गैस, तेल का उपयोग बढ़ने के साथ ही निर्माण से जुड़ी गतिविधियों में भी तेजी आएगी। दूसरी तरफ विज्ञान की चेतावनी अपने आप में स्पष्ट है। ग्रीनहाउस गैसों का उत्सर्जन 45-50 फीसद कम करके साल 2030 तक साल 2010 के नीचे के स्तर लाने और साल 2050 तक शून्य उत्सर्जन करने की जरूरत है। यानी कि हमें किसी किंतु- परंतु के बजाय तुरंत कदम उठाने होंगे। 2030 तक पेट्रोल की जगह ई- वाहन या कोयला की जगह प्राकृतिक गैस का इस्तेमाल जैसी चीजों से काम नहीं चलेगा, क्योंकि प्राकृतिक गैस भी एक जीवाश्म ईंधन ही है। हमें कहीं अधिक कठोर कदम उठाने होंगे। हालांकि इन कदमों के बारे में हमारे वैज्ञानिक पूरा सच सामने नहीं रख सकते, क्योंकि इसमें कुछ असुविधाजनक तथ्य होंगे। यह कौन नहीं जानता कि जलवायु परिवर्तन में बड़ा हिस्सा कुछ मुटठी भर देशों का है। अमेरिका और चीन मिलकर दुनिया के कुल सालाना उत्जर्सन का आधा हिस्सा वहन करते हैं। अगर हम 1870 से 2019 के बीच उत्सर्जन को देखें तो इसमें अमेरिका और यूरोपीय संघ का योगदान 27 फीसद और ब्रिटेन, जापान और चीन का योगदान 60 फीसदी मिलता है। दूसरी ओर कार्बन डाइ ऑक्साइड को नियंत्रित करने के लिए इन देशों का बजट उस सीमा तक नहीं है, जितना उनका उत्सर्जन है। इसलिए इस बड़े अंतर को समझना जरूरी है, तभी हम यह जान पाएंगे कि वास्तव में हमें करना क्या है। अगर हम पेरिस समझौते को ही देखें तो राष्ट्रीय निर्धारित योगदान यानी एनडीसी के हिसाब से इन देशों को 2030 तक कार्बन डाइ ऑक्साइड को नियंत्रित करने के लिए अपना बजट 68 फीसदी बढ़ाना होगा। लेकिन इसके बजाय वे अपना बजट कम कर रहे हैं और बाकी दुनिया से इसे बढ़ाने के लिए कह रहे हैं। ऐसा इसलिए है क्योंकि इन देशों का जो लक्ष्य है, वह निकृष्ट और अनुपात के हिसाब से गलत है। आने वाले दशक में चीन अपने कार्बन डाइ ऑक्साइड के मौजूदा 10 गीगाटन उत्सर्जन को बढ़ाकर 12 गीगाटन तक पहुंचा सकता है। इस स्थिति में हमें भारत की भूमिका पर बात करनी चाहिए। भारत सालाना कार्बन डाइ ऑक्साइड के उत्सर्जन के मामले में तीसरे नंबर है, अगर हम यूरोपीय संघ को एक ही समूह मान लें तो उसका नंबर चौथा हो जाता है। हालांकि यह उत्सर्जन कम करने के लिए आनुपातिक तौर पर हमें जितना योगदान करना चाहिए, वह हम बिल्कुल नहीं कर रहे।

साभार - डाउन टू अर्थ

आदिवासियों पर ऐतिहासिक अन्यायों के अर्थ और अनर्थ

नई दिल्ली। भारत में आदिवासियों के अधिकारों और उसकी स्वीकार्यता के अपने विरोधाभास हैं, जिसे महज ऐतिहासिक अन्याय जैसे एक शब्द मात्र से नहीं समझा जा सकता है। वास्तव में ऐतिहासिक अन्याय के उस पूरे शब्दकोष का अध्ययन और आंकलन जरूरी है, जिसके बिना हम ऐतिहासिक न्याय की भाषा और भावना दोनों ही नही गढ़ सकते।

भारत में ऐतिहासिक अन्याय की जड़ों को जंगल के कानून के साथ-साथ आए भू-राजनैतिक परिस्थितियों में परिवर्तन और उसके सामाजिक-आर्थिक परिणामों के बरअक्स देखा जाना चाहिए। वर्ष 1865 में घोषित भारत के प्रथम वन कानून का उद्देश्य महज राजस्व अर्जन से कहीं अधिक आदिवासियों के पूरे पारिस्थितिकी तंत्र में आमूल-चूल परिवर्तन करना था, जहां एक सर्व-संपन्न समाज को हमेशा के लिये विपन्नता के राय निर्मित अंधेरे में धकेला जा सके। ब्रितानिया हुकूमत के दस्तावेज बताते हैं कि वर्ष 1865 के पूर्व भारत के प्रथम (आदिवासी) समाज के अधीन देश के लगभग आधे जंगल-जमीन का स्वामित्व था। जो वर्ष 1927 के भारतीय वन अधिनियम के लागू होते-होते केवल 35 फीसदी रह गया। आजाद भारत में लागू - केंद्रीय वन संरक्षण कानून (1980) के आते-आते देश में वन-संसाधनों का क्षेत्र महज 21 फीसदी रह गया था। यदि वन-विभाग की स्थापना तथाकथित रूप से वनों और वन संसाधनों की सुरक्षा के लिए हुई थी तो फिर क्यों नहीं, वनों के संस्थागत विनाश का अभियोग वन विभाग पर चलाया जाना चाहिये? जाहिर है ऐतिहासिक अन्याय का प्रथम प्रस्थान बिंदु - वन कानून और नीतियां ही हैं, जिसका प्रमाण भारतीय वन अधिनियम है। भारत के लगभग सभी वन कानूनों का बुनियादी चरित्र ग्राम सभा और उनके अधिकारों के खिलाफ ही रहा है। भारतीय वन अधिनियम (1927) और केंद्रीय वन संरक्षण कानून (1980) में ग्राम सभा और उसके अधिकार आज भी स्वीकार्य शब्द नहीं हैं। अर्थात आदिवासी समाज के आजा-पुरखा के अपने 'जंगल-जमीन का पूर्ण संस्थागत अधिग्रहण', राय पोषित वन विभाग ने किया है। इसीलिये ऐतिहासिक न्याय का मार्ग, मौजूदा वनकानूनों (वनाधिकार कानून को छोड़कर) और वन-विभाग के रहते न संभव था और न होगा। भारत में उत्खनन कानून और उसके जमीनी परिणाम, ऐतिहासिक अन्यायों का दूसरा प्रमुख अध्याय है। भारत की अधिकांश खदानें आदिवासियों की अपनी भूमि पर हैं। ब्रितानिया हुकूमत ने अपने बनाये उत्खनन के औपनिवेशिक विधानों के माध्यम से यह स्थापित कर दिया कि भूमि स्वामी का अधिकार केवल ऊपरी सतह की भूमि पर है - सतह से नीचे के संसाधनों का सार्वभौमिक स्वामित्व तो राय का है। अर्थात उस भूमि पर रहने वाला आदिवासी, खनिज संसाधनों का स्वामी नहीं, बल्कि राय द्वारा इन संसाधनों के अधिग्रहण के बाद, महज मुआवजे का पात्र हो सकता है। जाहिर है, आदिवासियों की अपनी जन्मभूमि पर - उत्खनन कानूनों के संस्थागत प्रावधानों जरिये खनिज संसाधनों के उत्खनन (और अनियंत्रित दोहन) नें ऐतिहासिक अन्याय की बुनियाद को और अधिक गहरा ही किया। संयुक्त राष्ट्र संघ के भारत के संदर्भ में वर्किंग ग्रुप ऑन ह्यूमन राइट्स द्वारा वर्ष 2012 में जारी रिपोर्ट के अनुसार भारत में आजादी के बाद से लगभग 6.5 करोड़ लोगों का विस्थापन हुआ है - जो दुनिया के किसी भी मुल्क में सबसे अधिक है। यह रिपोर्ट कहती है कि कुल विस्थापितों में लगभग 40 फीसदी (2.6 करोड़) आदिवासी समुदाय है। अर्थात आदिवासियों की कुल आबादी का लगभग एक-चौथाई (25 फीसदी) अब तक विस्थापित हो चुका है। वास्तविकता यह भी है कि इनमें से लगभग दो-तिहाई से अधिक लोगों का अब तक पुनर्वास हुआ ही नहीं। दिल्ली के सीमापुरी की एक झुग्गीबस्ती में पहचान-विहीन रहने को मजबूर निर्मल कुजूर अब याद नहीं करना चाहते कि किस तरह कोरबा के कोयला खदानों से उनके बाप-दादा को अवैध नागरिक की तरह बेदखल कर दिया गया। पूना के झुग्गी बस्ती दत्तावाड़ी में रहने वाली पुष्पा टेटे की भी यही कहानी है। जब सुंदरगढ़ में उसकी बस्ती को खदान के नाम पर नेस्तनाबूद कर दिया गया। जाहिर है, उत्खनन कानूनों की बदौलत इन बेदौलत हुये आदिवासी समाज को न्याय तब तक मयस्सर नहीं हो सकता, जब तक 'राय' स्वयं आदिवासियों के हक में समर्थ रूप से खड़ा नहीं होता। लेकिन, क्या राय सचमुच आदिवासियों के अधिकारों के पक्ष में खड़ा हो सकता है ? इस काल्पनिक सवाल का यथार्थपरक उत्तर अब तक तो नहीं ही है। वर्ष 1947-50 के दौरान जब संविधान सभा में आदिवासियों के अधिकारों पर बहसें हो रहीं थीं तब बहुमत के आगे मात्र 5 आदिवासी सदस्यों की आवाजें नक्कारखाने में तूती बनकर रह गयी। यही नहीं, संविधान सभा के अंतर्गत गठित 22 प्रमुख समितियों में से एक का भी अध्यक्षीय दायित्व आदिवासी सदस्यों को नहीं दिया गया। संविधान के वायदों के बावजूद अधिसूचित क्षेत्रों में आदिवासी समाज और उनके जल, जंगल, जमीन के अधिकारों के लिये वैधानिक प्रावधान तय करने में भारत के भाग्य विधाताओं को पूरे 48 बरस लग गये। लेकिन विडंबना ही है कि जिस पंचायत (अनुसूचित क्षेत्रों में विस्तार) क़ानून को 1996 में भारत की संसद नें पारित किया और जिसे आदिवासियों के हक़-हुकूक और हुकूमत के लिये ऐतिहासिक मार्ग बताया, उसकी राह में भारत का कोई भी राय एक क़दम भी नहीं चल पाया। सच तो यह है कि भारत के किसी भी राय में पंचायत (अनुसूचित क्षेत्रों में विस्तार) क़ानून की नियमावली बनाने, उसे लागू करने और मान्यता देने का नैतिक-राजनैतिक साहस है ही नही । इसलिये राय घोषित और पोषित विधानों और नीतियों में पांचवीं अनुसूची में दर्ज आदिवासियों के अधिकार केवल सुनहरे हर्फ़ हैं जिन्हें देखकर खुशफ़हमी तो हो सकती है कि - विशेष पिछड़ी जनजातियां और अन्य अनुसूचित जनजातियां अधिकार-संपन्न हैं लेकिन, सत्य तो यह है कि अधिकारों का यह संवैधानिक आवरण केवल एक राजनैतिक जुमला भर साबित हुआ है। वनाधिकार कानून का आना निश्चित ही ऐतिहासिक न्याय की दिशा में पहला क़दम रहा है। भारत सरकार (आदिवासी मामलों का मंत्रालय, 2021) के आंकड़े कहते हैं कि लगभग 15 बरसों के बाद आज तक लगभग 20 फीसदी तथाकथित पात्र लोगों को उनके आधे-अधूरे वनाधिकार मिले हैं। यदि सरकारें सचमुच में संजीदां

होतीं तो वनाधिकार के ऐतिहासिक न्याय के नारों के रास्ते आदिवासी क्षेत्रों में बरसों से स्थायी हो चुकी विपन्नता को समाप्त किया जा सकता था। लेकिन वनाधिकार कानून की महज मुट्ठीभर सफ़लता यही साबित करती है कि अन्याय की जड़ें, राय-व्यवस्था में कहीं अधिक गहरी हैं। दुर्भाग्य ही है कि वनाधिकार कानून के दायरे में संवैधानिक रूप से संरक्षित एक विशेष पिछड़ी जनजाति के बैगा, डोंगरिया कंध, सहरिया और पहाड़िया को यह साबित करना ही होगा कि वह वर्ष 2005 से पहले उसी जल-जंगल और जमीन पर काबिज था। इसका अर्थ यह भी हुआ कि भारत के संविधान में पांचवी अनुसूची में वर्णित आदिवासी समाज की वैधानिक हैसियत को चुनौती दी जा सकती है। अर्थात उस (तथाकथित) अधिकारसंपन्न आदिवासी को आवेदक बनाकर अपमानित किया जा सकता है; और यह साबित करने के लिये बाध्य किया जा सकता है कि वह अधिसूचित क्षेत्र का मूल निवासी आदिवासी है - और जंगल-जमीन पर वह काबिज था/है। लेकिन, इन्हीं पांचवीं अनुसूची क्षेत्रों में बहुसंख्यक विशेष पिछड़ी जनजातियों के अधिकारों को खारिज' करने का अर्थ यह भी है कि इन क्षेत्रों में हुये मानवविज्ञान, इतिहास, भूगोल और समाजशास्त्र के तमाम अध्ययन बेमानी हैं -जो यह साबित करते हैं कि आदिवासी उन क्षेत्रों के मूल निवासी हैं और उनकी संस्कृति और आजीविका उन जंगलों पर निर्भर रही है। वास्तव में यह शर्मनाक है, जहां सदियों से जंगल जमीन के संरक्षक रहे और संवैधानिक रूप से सुरक्षा प्राप्त अधिकारसंपन्न विशेष पिछड़ी जनजातियों को कानून और व्यवस्था दोनों नें महज एक आवेदक के रूप में अपघटित कर दिया ।

साभार - डाउन टू अर्थ

2050 तक सर्दी घटने और चरम गर्मी के साथ वर्षा वाली बाढ़ बढ़ने की प्रबल संभावना

हिमाचल। हिमालय हो या मैदानी हिस्से हर जगह धरती गरम हो रही है। सतह का तापमान बढ़ रहा है और सर्दी की अवधि और असर में कमी आ रही है। अगले 20 से 30 बरस यानी 2050 के आस-पास यह जलवायु स्थितियां और ज्यादा गंभीर हो सकती हैं। न सिर्फ चरम तापमान और वर्षा वाली बाढ़ की आफत बढ़ सकती है बल्कि सर्दी और कोहरे में बड़ी कमी आ सकती है।

इतना ही नहीं समुद्रों के भीतर वनस्पतियों से मिलने वाला ऑक्सीजन भी कम होता जा रहा है क्योंकि वहां अम्लीयता बढ़ रही है। वातावरणीय कॉर्बन डाई ऑक्साइड के सतह पर बढ़ने की प्रबल परिस्थितियां बन रही हैं। यह अनुमान जलवायु परिवर्तन के अंतरसरकारी समूह (आईपीसीसी) के वैज्ञानिकों ने अपनी छठवे आकलन रिपोर्ट में लगाया है। आईपीसीसी संयुक्त राष्ट्र के जलवायु वैज्ञानिकों का एक अंग है। जलवायु वैज्ञानिक समूह ने चेताया है कि दुनिया में इस वक्त कार्बन डाई ऑक्साइड और अन्य ग्रीन हाउस गैसों का जैसा उत्सर्जन जारी है। यदि इस परिस्थिति के हिसाब से या अगले 20 से 30 बरस के बीच वैश्विक तापमान 2 डिग्री सेल्सियस सीमा को पार कर जाता है तब ऐसी परिस्थितियां रह सकती हैं। वैज्ञानिकों ने पहले ही यह अनुमान लगाया था कि 21वीं सदी में वैश्विक तापमान 2 डिग्री सेल्सियस की सीमा को पार कर सकता है। मौजूदा उत्सर्जन स्थितियों के आधार पर ऐसा होने का आसार 2040 तक है। जलवायु परिवर्तन की वैश्विक अवधारणा अब क्षेत्रीय स्तर पर पहुंच चुकी है। पहली बार वैज्ञानिकों ने क्षेत्रीय जलवायु को भी अपनी रिपोर्ट में शामिल किया है। क्षेत्रीय स्तर पर महसूस किए जाने वाले जलवायु दुष्प्रभाव भी सच्चे हैं। ऊपर चित्र में आप देख सकते हैं कि 2050 तक वैज्ञानिकों ने सात प्रमुख व्यापक जलवायु चालकों (सीआईडी) के तहत यह उच्च संभावना, मध्यम संभावना के साथ बढ़त और कमी का अनुमान पेश किया है। इनके रंगों के आधार पर इनकी संभावनाएं व्यक्त की गई हैं। इस आधार पर देखें तो हीट एंड कोल्ड श्रेणी में सतह की गर्मी और चरम तापमान के बढ़ने का अनुमान सबसे ज्यादा लगाया गया है। जबकि ठंड और कोहरे में बड़ी कमी का आसार जताया गया है। इसी तरह वेट एंड ड्राई श्रेणी में भारी वर्षा और वर्षा वाली बाढ़ की प्रबल संभावना है जबकि मौसमी आग लगने की घटना का भी मध्यम अनुमान है। अन्य श्रेणी में सतह पर वातावरणीय सीओटू के बढ़ने का सबसे ज्यादा अनुमान जताया गया है। इसके अलावा तटीय इलाकों में समुद्रों के गर्म होने, बाढ़ आने की घटनाओं में वृद्धि को भी आंका गया है। आईपीसीसी की यह रिपोर्ट 1990 के बाद से छठवी है और 2013 के बाद से पहली। वैज्ञानिक समूह ने सीधा और सरल संदेश दिया है कि मानव जनित जलवायु परिवर्तन चरम घटनाओं, लू और भारी वर्षा व सूखे का कारक है। यदि चीजें नहीं संभली तो यह और तेज व गंभीर होने जा रहा है।

ग्राफीन फूट रैपर से बढ़ेगी फलों की उम्र, लंबे समय तक बनी रहेगी ताजगी

नई दिल्ली। फल बहुत जल्दी खराब हो जाते हैं, इसलिए उत्पादित फल का 50 फीसदी बर्बाद हो जाता है।पारंपरिक संरक्षण या फलों के बचाव के लिए राल, मोम, या खाद्य पॉलीमर के कोटिंग का उपयोग किया जाता है। फल इन्हीं कोटिंग पर निर्भर करते है, जिसकी वजह से स्वास्थ्य समस्याएं हो सकती हैं। अब भारतीय वैज्ञानिकों ने कार्बन (ग्राफीन ऑक्साइड) से बना एक मिश्रित कागज विकसित किया है जो चीजों को सुरक्षित रखने वाले पदार्थों से भरा हुआ है। जिसे फलों को लंबे समय तक ताजा रखने में मदद करने के लिए रैपर के रूप में इस्तेमाल किया जा सकता है।

चीजों को सुरक्षित रखने की मौजूदा तकनीक में रैपर को फल द्वारा सोख लिया जाता है, जिससे इन चीजों या फलों को खाने वालों को फूड पोइजनिंग या स्वास्थ्य खराब होने का खतरा बना रहता है। लेकिन इस नई तकनीक से बनाए गए परिरक्षक (प्रिजर्वेटिव) रैपर जरूरत पड़ने पर ही प्रिजर्वेटिव छोड़ते हैं। रैपर का पुन- उपयोग किया जा सकता है, जो मौजूदा तकनीक में संभव नहीं है। इस समस्या का समाधान करने के लिए, भारत सरकार के विज्ञान और प्रौद्योगिकी मंत्रालय के विज्ञान और प्रौद्योगिकी विभाग के एक स्वायत्त संस्थान, मोहाली के नैनो विज्ञान और प्रौद्योगिकी संस्थान के शोधकर्ताओं ने नई खोज की है। डॉ. पी. एस विजय कुमार की अगुवाई में शोधकर्ताओं की एक टीम ने इस कारनामे को कर दिखाया है। यह एक विकल्प है जो कचरे से उत्पन्न हो सकता है और फल में प्रिजर्वेटिव अथवा इसको बचाने वाले रैपर को फलों द्वारा सोखा नहीं जाता है। सक्रिय ग्राफीन ऑक्साइड से भरे अणुओं को तब परिरक्षक (प्रिजर्वेटिव) के साथ भर दिया जाता है। यह उच्च सुरक्षा देने वाला ग्राफीन ऑक्साइड से भरा प्रिजर्वेटिव, जब फलों को लपेटने के लिए उपयोग किए जाने वाले कागज में डाला जाता है, तो यह सुनिश्चित करता है कि फल जहरीले प्रिजर्वेटिव से भरा न हो। लेकिन जब फल अधिक पक जाता है या रोगजनकों से प्रभावित हो जाता है, तो एसिड, क्रिटिक और ऑक्सालिक एसिड के स्राव से अम्लता बढ़ जाती है, जिससे फल के संरक्षण के लिए प्रिजर्वेटिव का निकलना शुरू हो जात है। अन्यथा, प्रिजर्वेटिव कार्बन आवरण के साथ रहता है। फलों के अगले बैच के संरक्षण के लिए फल की खपत के बाद रैपर का पुन- उपयोग किया जा सकता है। जो कि विषैला नहीं है और दोबारा उपयोग किए जा सकने वाले रैपिंग पेपर को विकसित करने के लिए, टीम ने कार्बन मैट्रिक्स को प्रिजर्वेटिव के साथ गर्म (इनक्यूबेट) करने की अनुमति दी। कमरे के तापमान में 24 घंटे के लिए रखने के बाद, इनसे अतिरिक्त प्रिजर्वेटिव को हटाने के लिए इन्हें कई बार धोया गया था। अंत में, इस कार्बन-संरक्षक संमिश्र को कागज में ढाला गया। यह शोध %एसीएस एप्लाइड मैटेरियल्स एंड इंटरफेस% जर्नल में प्रकाशित हुआ है। पहले से ही अपशिष्ट से प्राप्त कार्बन सामग्री कार्बनिक अणुओं को भारी मात्रा में रखने तथा उन्हें बंद करने के लिए जानी जाती है, इसलिए प्रिजर्वेटिव में कार्बन भर कर तैयार किया गया है और फलों के संरक्षण के लिए कागज में डाला गया है। डॉ विजयकुमार कहते हैं कि कार्बनिक अणुओं को धारण करने के लिए कार्बन की क्षमता बढ़ाने से हमें इस उत्पाद को विकसित करने में मदद मिली। यह नया उत्पाद फलों को लंबे समय तक तरो ताजा रखने तथा फलों की उम्र बढ़ाकर किसानों और खाद्य उद्योग को फायदा पहुंचा सकता है। फलों के लिए इस रैपर का उपयोग करने से यह भी सुनिश्चित होगा कि ग्राहक को स्वस्थ गुणवत्ता वाले फल मिले, क्योंकि हमने फिनोल सामग्री में सुधार किया है। इस ग्राफीन फूट रैपर के उत्पादन के लिए केवल बायोमास के ताप से उत्पादित कार्बन की आवश्यकता होती है, इसलिए इससे बायोमास की खपत और रोजगार सृजन में भी लाभ होगा।

साभार

वायु प्रदूषण से भी बढ़ता है प्लास्टिक का कचरा

शिमला।

सर्दियों के मौसम की शुरुआत हो चुकी है और देश में खासकर दिल्ली में प्रदूषण का स्तर हर दिन बद से बदतर होने लगा है। इस बढ़ते वायु प्रदूषण के लिए कहीं न कहीं हम लोग जिम्मेदार हैं। नेशनल यूनिवर्सिटी ऑफ सिंगापुर (एनयूएस) के शोधकर्ताओं ने प्रदूषण और पर्यावरण को लेकर मानव व्यवहार संबंधी एक अध्ययन किया है। अध्ययन के अनुसार, जब बाहर की हवा खराब होती है तो कार्यालय के कर्मचारियों को दोपहर के भोजन के लिए बाहर जाने की तुलना में भोजन मंगवाने की अधिक संभावना होती है। यह भोजन प्लास्टिक के डिब्बों द्वारा पहुंचाया जाता है। इन डिब्बों को खाना खाने के बाद फेंक दिया जाता है। जो प्लास्टिक प्रदूषण का कारण बन जाता है।

यह अध्ययन करने वाले अल्बर्टो सालवो का कहना है कि वातावरण में प्लास्टिक प्रदूषण को फैलाने वाले मानव व्यवहार को समझने की कोशिश कभी नहीं हुई है। इसमें हमारा अध्ययन मदद कर सकता है। हमारा उद्देश्य ऑनलाइन खाना मंगवाने, वायु प्रदूषण और प्लास्टिक कचरे को एक कड़ी के रूप में जोड़ता है। विकासशील देशों में बढ़ते शहरीकरण के कारण वायु गुणवत्ता पिछले एक दशक से नियमित रूप से खराब होती जा रही है, जबकि खाद्य वितरण उद्योग तेजी से बढ़ रहा है। सालवो के मुताबिक, हमने जो साक्ष्य जुटाए हैं, उनमें भोजन वितरण करने वाले डिब्बे से लेकर कैरी बैग तक बहुत सारा एक बार उपयोग होने वाला प्लास्टिक देखा गया है। यह अध्ययन नेचर ह्यूमन बिहेवियर में प्रकाशित हुआ है। एनयूएस के अध्ययनकर्ताओं ने चीन में यह अध्ययन किया। जहां 35 करोड़ पंजीकृत उपयोगकर्ता विभिन्न ऑनलाइन खाद्य वितरण प्लेटफार्म से जुड़े है। पूरे चीन में हर दिन लगभग 6.5 करोड़ प्लास्टिक के डिब्बों (कंटेनरों) को भोजन करने के बाद फेंक दिया जाता है। अध्ययन में जनवरी और जून 2018 के बीच तीन बार स्मॉग से भरे चीनी शहरों - बीजिंग, शेनयांग और शिजियाझुआंग में सर्वेक्षण किया गया। सर्वेक्षण में समय-समय पर 11 कार्यदिवसों के लिए 251 कार्यालय के हर एक कर्मचारी, के दोपहर के भोजन के विकल्पों को शामिल किया गया। कार्यकर्ता सर्वेक्षण के लिए, शोधकर्ताओं ने 2016 में ऑनलाइन फूड डिलीवरी प्लेटफॉर्म के बीजिंग ऑर्डर बुक के आंकड़े भी लिए। उपयोगकर्ताओं का लगभग 350,000 फूड डिलीवरी ऑर्डर के आंकड़ों को एकत्र किया। सर्वेक्षण और ऑर्डर बुक के आंकड़ों की तुलना पीएम 2.5 के साथ तीनों शहरों में वायु-निगरानी नेटवर्क से भोजन के समय की गई थी। यह देखा गया कि इन अवधियों के दौरान पीएम 2.5 का स्तर अक्सर 24-घंटे के यूएस नेशनल एंबिएंट एयर क्वालिटी स्टैंडर्ड ऑफ 35 ग्राम प्रति घन मीटर से ऊपर है, तो प्रदूषण अत्यधिक दिखाई देगा। दोनों आंकड़ों के स्रोतों ने पीएम2.5 प्रदूषण और खाद्य वितरण खपत के बीच एक मजबूत संबंध स्थापित किया। मौसमी प्रभावों के लिए, फर्म की ऑर्डर बुक से पता चला है कि पीएम 2.5 में 100 ग्राम प्रति घन मीटर की वृद्धि से खाद्य वितरण की खपत में 7.2 प्रतिशत की वृद्धि हुई। कार्यालय के कर्मचारियों ने डिलीवरी का ऑर्डर तब अधिक दिया जब, 100 ग्राम प्रति घन मीटर पीएम 2.5 का प्रभाव छह गुना आधिक, जो 43 प्रतिशत था। एनयूएस बिज़नेस स्कूल में विपणन विभाग के प्रोफेसर चो ने कहा स्मॉग या धुंध के साथ सामना न करना पड़े, इसलिए दोपहर के भोजन के समय एक कार्यालय का कर्मचारी केवल अपने दरवाजे पर भोजन पहुंचाने का आदेश देकर जोखिम से बच सकता है। कार्यालय कर्मियों द्वारा भोजन की 3,000 से अधिक तस्वीरें प्रस्तुत की गईं, जिसने एनयूएस टीम को यह तय करने में मदद की कि दोपहर के भोजन के विकल्पों में कितना अलग-अलग तरह का प्लास्टिक उपयोग होता है। विशेष रूप से, रेस्तरां में खाया जाने वाला भोजन बनाम कार्यालय में दिया जाने वाला भोजन। शोधकर्ताओं ने अनुमान लगाया कि 100 ग्राम प्रति घन मीटर पीएम 2.5 वृद्धि ने भोजन के डिस्पोजेबल प्लास्टिक उपयोग को औसतन 10 ग्राम बढ़ा दिया था। एक प्लास्टिक कंटेनर के द्रव्यमान का लगभग एक तिहाई। अध्ययन में पता चला कि औसत वितरित भोजन में, एक बार उपयोग होने वाले प्लास्टिक की वस्तुओं में लगभग 54 ग्राम प्लास्टिक का उपयोग किया गया था। ऑर्डर बुक के आधार पर, शोधकर्ताओं ने यह भी अनुमान लगाया कि एक निश्चित दिन में, यदि चीन में 100 ग्राम प्रति घन मीटर पीएम 2.5 बढ़ जाता है, तो बीजिंग में 25 लाख अधिक भोजन के डिब्बे वितरित किए जाएंगे, अर्थात अतिरिक्त 25 लाख प्लास्टिक बैग और 25 लाख डिब्बे की आवश्यकता होगी।

- साभार

2050 तक शून्य उत्सर्जन के लिए भारत को 55 गुणा बढ़ानी होगी अपनी अक्षय ऊर्जा क्षमता

नई दिल्ली। 2050 तक उत्सर्जन शून्य करने के लिए भारत को अपनी अक्षय ऊर्जा की क्षमता 55 गुणा बढ़ानी होगी। यह जानकारी काउंसिल ऑन एनर्जी, एनवायरनमेंट एंड वाटर (सीईईडब्लू) द्वारा जारी एक रिपोर्ट में सामने आई है। जिसका मतलब है कि यदि 2050 तक भारत अपने कार्बन उत्सर्जन को शून्य करना चाहता है तो उसे अपनी 83 फीसदी बिजली अक्षय स्रोतों से प्राप्त करनी होगी। हालांकि इसमें जल विद्युत क्षमता को शामिल नहीं किया गया है। गौरतलब है कि म019 में भारत की कुल ऊर्जा 160 टेरावाट प्रति घंटे में अक्षय ऊर्जा (हाइड्रोपावर के बिना) का योगदान केवल 10.1 फीसदी था। यदि देश के ऊर्जा उत्पादन में जीवाश्म ईंधन जैसे कोयला, तेल आदि के योगदान की बात करें तो 2015 में 73 फीसदी ऊर्जा इन्हीं स्रोतों से प्राप्त होती थी। जिसे 2050 तक घटाकर 5 फीसदी पर लाना होगा। इसी तरह भारत के तेल के क्षेत्र में बायोफ्यूल की हिस्सेदारी अभी बिलकुल न के बराबर है जिसे 2050 तक 98 फीसदी करना होगा। इसी तरह भारत के औद्योगिक ऊर्जा उपयोग में अक्षय ऊर्जा की हिस्सेदारी तीन गुना बढ़ानी होगी, जोकि 2018 में 20.3 फीसदी से बढाकर 2050 तक 70 फीसदी करनी होगी। इसी तरह 2019 में भारत कारों की बिक्री की बात करें तो उसमें इलेक्ट्रिक वाहनों की हिस्सेदारी केवल 0.1 फीसदी थी जिसे 2050 तक बढाकर 76 फीसदी पर लाना होगा।

सीईईडब्लू द्वारा जारी इस रिपोर्ट के अनुसार नेट जीरो एमिशन के लक्ष्य को हासिल करने के लिए या तो भारत को अपने ग्रीनहाउस गैसों के उत्सर्जन को पूरी तरह समाप्त करने के जरुरत है या तो उसे इस तरह संतुलित करना होगा कि उससे उत्सर्जन में वृद्धि न हो। यह अध्ययन नेट जीरो एमिशन के लिए किसी एक वर्ष को तय करने की जगह कई मार्गों को रेखांकित करता है जिससे उत्सर्जन में हो रही वृद्धि को नेट जीरो पर लाया जा सके। शोध के अनुसार भारत को अगले एक दशक के भीतर अपने उत्सर्जन के चरम पर पहुंचना होगा या दूसरे शब्दों में कहें तो उसे यह तय करना होगा की उस सीमा के बाद वो और ज्यादा उत्सर्जन नहीं करेगा, तभी वो 2050 तक नेट जीरो एमिशन पर पहुंच पाएगा। इस शोध के शोधकर्ता और सीईईडब्लू से जुड़े वैभव चतुर्वेदी के अनुसार यह विश्लेषण भारत के भविष्य से जुड़े निर्णयों के लिए नीति निर्माताओं को विभिन्न विकल्प प्रदान करता है। भारत को एक साथ दोहरे बदलाव से गुजरना होगा, एक तरफ जहां क्षेत्रों में तेजी से विद्युतीकरण करना है वहीं दूसरी तरफ यदि उसे नेट जीरो पर पहुंचना है तो उसे बिजली उत्पादन में रिन्यूएबल एनर्जी को भी बढ़ावा देना होगा। नीति निर्माताओं को विनिर्माण के उन क्षेत्रों को भी पहचानना होगा जहां बिजली, जीवाश्म ईंधन की जगह ले सकती है। इसके साथ ही बिजली की कीमत को भी नियंत्रण में रखना महत्वपूर्ण होगा, जिससे वो प्रतिस्पर्धा में बनी रहे। इसके साथ ही आने वाले दो दशकों के भीतर प्राथमिक ऊर्जा से होने वाले उत्सर्जन के चरम पर पहुंचना होगा जिससे उत्सर्जन में गिरावट के लक्ष्य को तय किया जा सके। यदि विश्व बैंक द्वारा जारी आंकड़ों पर गौर करें तो उसके अनुसार देश में प्रति व्यक्ति कार्बन डाइऑक्साइड एमिशन कई देशों यहां तक की वैश्विक औसत से भी काफी कम है। 2016 में भारत का प्रति व्यक्ति सीओ2 एमिशन 1.82 टन था जबकि इसके विपरीत वैश्विक औसत करीब 4.55 टन था। शोध के अनुसार भारत में नेट जीरो एमिशन का रास्ता अन्य विकसित देशों जैसे चीन, जापान, यूरोपीय संघ, यूनाइटेड किंगडम और अमेरिका से काफी अलग है। यदि इन देशों के उत्सर्जन की बात करें तो अपने चरम वर्ष में वो भारत के प्रति व्यक्ति उत्सर्जन से काफी ज्यादा है, यहां तक कि यदि भारत का प्रति व्यक्ति उत्सर्जन 2050 में चरम पर हो तब भी वो इन देशों की तुलना में काफी कम होगा। दूसरा बात यह कि यदि भारत के जीडीपी की वास्तविक विकास दर को देखें तो यह अन्य देशों की तुलना में काफी ज्यादा है। जिसका मतलब है कि भारत जल्द से जल्द अपने विकास दर को चरम पर पहुंचा सकता है जिससे वो उत्सर्जन में कमी कर सके। इस शोध में एक दिलचस्प तथ्य यह भी सामने आया कि यदि भारत का उत्सर्जन 2030 में अपने चरम पर होता है और वो 2060 तक चीन की तरह अपने नेट जीरो एमिशन के लक्ष्य को हासिल करता है, तो उसका 2021 से 2100 के बीच कुल कार्बन उत्सर्जन 80 गीगा टन सीओ2 होगा। जबकि उसके विपरीत चीन का को उत्सर्जन 349 गीगाटन और अमेरिका का 104 गीगाटन सीओ2 होगा, जोकि भारत से काफी ज्यादा है।

पूर्वोत्तर भारत के अधिकतर राज्यों में भारी बारिश के आसार

असम। भारत मौसम विज्ञान विभाग (आईएमडी) के मुताबिक एक चक्रवाती प्रसार बिहार के ऊपर बना हुआ है और यह मध्य ट्रोपोस्फेरिक स्तर तक फैला हुआ है। जिसके चलते अगले 5 दिनों के दौरान पूर्वोत्तर और उप-हिमालयी पश्चिम बंगाल और सिक्किम में भारी से बहुत भारी बारिश का दौर जारी रहने का अनुमान है। 11 से 13 अगस्त के दौरान असम और मेघालय के अलग-अलग हिस्सों में अत्यधिक भारी वर्षा होने के आसार हैं। अगले 4 से 5 दिनों के दौरान पूर्वी उत्तर प्रदेश, बिहार, झारखंड और पश्चिम बंगाल में गंगा के कुछ तटीय इलाकों में मूसलाधार बारिश होने की संभावना है। 11और 12 अगस्त को बिहार के अलग-अलग हिस्सों में जमकर होगी बारिश। 13 और 14 अगस्त के दौरान उत्तराखंड में और 12 अगस्त को हिमाचल प्रदेश के अलग-अलग हिस्सों में भारी वर्षा का अनुमान लगाया गया है। अगले 5 दिनों के दौरान तमिलनाडु और केरल में भारी वर्षा होने के आसार हैं। उत्तर पश्चिमी भारत - पंजाब, हरियाणा, राजस्थान, मध्य भारत से सटे मैदानी इलाकों और महाराष्ट्र और गुजरात सहित भारतीय प्रायद्वीप के अधिकांश हिस्सों -तमिलनाडु और केरल को छोड़कर बाकी हिस्सों में बहुत कम बारिश होने का अनुमान लगाया गया है। आज यानी 11 अगस्त को असम और मेघालय के अलग-अलग हिस्सों में भारी से बहुत भारी वर्षा होने का अनुमान है। वहीं बिहार, उप-हिमालयी पश्चिम बंगाल और सिक्किम, अरुणाचल प्रदेश और नागालैंड में अलग-अलग स्थानों पर जमकर मेघ बरसेंगे । आज मणिपुर, मिजोरम और त्रिपुरा, पूर्वी उत्तर प्रदेश, छत्तीसगढ़, झारखंड, पश्चिम बंगाल में गंगा के तटीय इलाकों, अंडमान और निकोबार द्वीप समूह, तमिलनाडु, पुडुचेरी, कराईकल, केरल और माहे में झमाझम बारिश होने का अनुमान है। आज जम्मू और कश्मीर, लद्दाख, गिलगित-बाल्टिस्तान के अलग-अलग हिस्सों में बिजली गिरने, तेज हवाएं चलने तथा गरज के साथ बौछारें पड़ने का अनुमान है। वहीं आज मुजफ्फराबाद, हिमाचल प्रदेश, उत्तराखंड, पूर्वी उत्तर प्रदेश, पूर्वी मध्य प्रदेश, बिहार, झारखंड, पश्चिम बंगाल और सिक्किम, ओडिशा, अंडमान और निकोबार द्वीप समूह, रायलसीमा, तटीय आंध्र प्रदेश और यनम और तमिलनाडु, पुडुचेरी और कराईकल में भी बिजली गिरने, तेज हवाएं चलने तथा गरज के साथ बौछारें पड़ने के आसार हैं।

शुभम को यूथ आइकॉन, नितेष को मिस्टर यूनिवर्स अवार्ड-21

एक ने सोशलवर्क, दूसरे ने फैशन में किया काम

भोपाल। शहर के दो युवाओं शुभम चौहान और नितेष खतवानी ने अलग अलग क्षेत्र में काम कर शहर का नाम रोशन किया है। भारत सरकार के युवा कार्यक्रम एवं खेल मंत्रालय की ओर से समाजसेवा के क्षेत्र में उत्कृष्ट कार्यों के लिए 2018-19 का पुरस्कार शुभम चौहान को दिया जा रहा है। यह पुरुस्कार अंतर्राष्ट्रीय युवा दिवस के अवसर पर नई दिल्ली में आयोजित समारोह में दिया जाएगा। इसी तरह दिल्ली में आयोजित मिस्टर यूनिवर्स वर्ल्डवाइड एक्सक्लूसिव एंड एक्सट्राआर्डिनरी 2021 कार्यक्रम में शहर के नितेष खतवानी ने कई टाइटल अपने नाम किए। इसमें 20 फाइनल कंटस्टेंटस में से नितेष का पहला स्थान रहा। इसमें नितेष को चार पड़ाव पूरे करने थे। जिसमे पर्सनल इंट्रोडक्शन में झाबुआ की ड्रेस वियर की। उन्हें मिस्टर यूनिवर्स एक्सक्लूसिव एंड एक्सट्राआर्डिनरी 2021, हैरिटेज एम्बेसडर बेस्ट नेशनल एंड ट्रेडिशनल ड्रेस का टाइटल मिला।

स्वामी, मुद्रक, प्रकाशक सोनल मेहता केलिए प्रतीक्षा ग्राफिक्स, 127 देवी अहिल्या मार्ग, इंदौर (म.प्र.) से मुद्रित एवं 209-बी शहनाई रेसीडेंसी-2 कनाड़िया रोड इंदौर (म.प्र.) से प्रकाशित। संपादक: डॉ. सोनल मेहता फोन : 0731-2595008 Mail.sonal12mehta@yahoo.co.in 9755040008